दायित्वज्ञानम्

प्रसाद की देव भक्ति

प्रसाद की दैव भक्ति

बचपन से ही प्रसाद में पौरुष की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी। बड़े ही क्यों न हों, उसे डांटें तो वह नाराज़ हो उठता था। कोई भी उसमें ग़लती ढूँढ़ने की कोशिश करता नहीं था, जिसका कारण था, उसकी अपार दैव भक्ति।

प्रसाद हर रोज़ मंदिर जाता था। बड़ों से पूछ-पूछकर भगवान की कथाएँ सुना करता था। अपनी उम्र के लड़कों से वह बहुत कम बोलता था। दैव कार्यों में उसकी अधिक रुचि थी। गाँव में जो पुराण सुनाये जाते थे, उन्हें ध्यान से सुनता था। फ़ुरसत के समय गीता पारायण करता था। परंतु, साथ ही वह विद्याएँ भी ध्यानपूर्वक सीखता था। अठारह वर्ष की उम्र में ही उसने विद्याभ्यास पूरा कर लिया।

प्रसाद की दैवभक्ति की प्रशंसा उसके बचपन में सब करते थे। परंतु, बड़ा हो जाने तथा शिक्षा ग्रहण करने के बावजूद उसकी दैव भक्ति मूढ़भक्ति में बदल गयी। इसलिए बड़े लोग उससे थोड़ा दूर ही रहते थे। प्रातःकाल ही वह पूजाओं में निमग्न हो जाता था, घर के लोगों के लिए वह पकवान बनाता था और उन्हें खाने पर मज़बूर करके तंग किया करता था।

तब तक दादा और दादी काफी बूढ़े हो चुके थे। माता-पिता भी कोई काम करने के लायक़ नहीं रह गये। उसका बड़ा भाई सूरज उससे दो साल बड़ा था। वह अकेले ही घर व खेत के काम संभाल रहा था। प्रसाद से कोई काम करने कहा जाता तो वह चिढ़ जाता था। उसका पूरा ध्यान दैव भक्ति पर ही केंद्रित था। प्रसाद के पिता इस विषय को लेकर दूसरों से एक दिन बता रहे थे। सूरज ने उसका समर्थन करते हुए कहा, "उसमें पौरुष अधिक है। उसपर किसी की टिप्पणी उसे पसंद नहीं आती। मैं ही उसका भी काम संभालूँगा। उसको लेकर आपको चिंतित होने

भवानी प्रसाद

दायित्वज्ञानम्

प्रसादः बाल्यात् आरभ्य एव शीघ्रकोपी । लघु तर्जनं कृतं चेदपि सः नितरां कुपितः भवति स्म । अतः कोऽपि तस्य व्यवहारे दोषदर्शनसाहसं न करोति स्म । किन्तु भगवति तस्य महती भक्तिः आसीत् । सः प्रतिदिनं मन्दिरं गत्वा भगवत्कथाः शृणोति स्म । सः समवयस्कैः सह अत्यन्तं न्यूनं भाषते स्म । ग्रामे पुराणश्रावणं यदा भवति तदा सावधानं श्रुत्वा लब्धे समये गीतापारायणम् अपि करोति स्म सः । अन्यविद्याः अपि सम्यक् एव अधीत्य अष्टादशे वयसि सः विद्याभ्यासं समापितवान् ।

यदा सः बालः आसीत् तदा तस्य दैवभक्तिं सर्वे प्रशंसन्ति स्म एव । किन्तु ज्येष्ठत्वं यथा यथा प्राप्तं तथा तथा तस्य दैवभक्तिः मूढभक्तिः इव परिवृत्ता अभवत् । अतः ज्येष्ठाः अपि तस्मात् दूरे एव भवन्ति स्म । प्रातःकाले एव सः पूजायां मग्नः भवति स्म ।

तस्य पितामहः पितामही च वार्धक्यम् आप्तवन्तौ आस्ताम् । मातापितरौ अपि किमपि कार्यं कर्तुं शक्तौ न आस्ताम् । तस्य अग्रजः आदित्यः तस्मादपि वर्षद्वयेन ज्येष्ठः आसीत् । सः एकाकी एव गृहस्य क्षेत्रस्य च कार्याणि निर्वहति स्म ।

कार्यं कर्तुम् उक्तं चेत् प्रसादः शीघ्रकोपं दर्शयति स्म । तस्य सर्वा अपि एकाग्रता दैवभक्तौ एव आसीत् ।

एतेन खिन्नः तस्य पिता आदिनं तम् एव विषयं प्रधानीकृत्य प्रलपति स्म । तदा आदित्यः वदति स्म - ''किमर्थं विषयेऽस्मिन् चर्चा ? कार्याणि कर्तुम् अहम् अस्मि खलु ? प्रसादे कोपः अधिकः । अप्रियं कथनं सर्वथा न सहते सः । अतः तं किमपि मा वदन्तु भवन्तः । गृहस्य सर्वाणि अपि कार्याणि अहं निर्वक्ष्यामि'' इति ।

तदनन्तरं छायया सह आदित्यस्य विवाहः

की कोई ज़रूरत नहीं।''

कुछ समय बाद छाया नामक लड़की से सूरज की शादी हुई। ससुराल आने के बाद कुछ समय तक छाया का व्यवहार प्रसाद से अच्छा ही रहा। किन्तु, जब उसने देखा कि प्रसाद घर की कोई जिम्मेदारी संभालने को तैयार नहीं है तो छोटे-मोटे काम उसके सुपुर्द करने लगी। प्रसाद इनकार कर देता तो वह उससे झगड़ने लगती। प्रसाद ने भाई से छाया के बारे में शिकायत की। सूरज ने उसे समझाते हुए कहा, ''छाया दिन भर घर के कामों में व्यस्त रहती है। उसकी बातों का बुरा मत मानना। समय पर खाना और अपने दैव कार्यों पर लगे रहना।'' प्रसाद को लगा कि बड़े भैया उसकी शिकायत को गंभीरता से नहीं ले रहे हैं। उसने घर के बड़ों से यही बात दोहरायी तो उन्होंने भी कहा, ''भाई और भाभी कामों में व्यस्त रहते हैं। वे कुछ कह भी दें तो बुरा मत मानना।''

प्रसाद ने उनसे साफ़-साफ़ बता दिया, ''आप भाभी से स्पष्ट बता दीजिये कि आगे से वह मेरे विषय में हस्तक्षेप न करे।''

छाया को जब यह मालूम हुआ, तब उसने प्रसाद से कहा, ''जब तक शरीर में ताक़त थी, तब तक तुम्हारे दादा और पिता ने कड़ी मेहनत की। तुम्हें चाहिये कि उन्होंने पसीना बहाकर जो जायदाद सौंपी, उसकी रक्षा करो, उसे और बढ़ाओ। तुम्हारे भाई भी कड़ी मेहनत कर रहे हैं और जायदाद को बनाये रखने की कोशिश में लगे हुए हैं। वह होता है पौरुष। कोई काम किये बिना, बेकार बैठे रहना पौरुष नहीं कहलाता।''

''मैं थोड़े ही बेकार बैठता हूँ। प्रह्लाद जैसा दैव भक्ति में निमग्न रहता हूँ। हिरण्यकश्यप की तरह मुझे सताना मत। भगवान तुम्हें दंड देंगे,'' उसने भाभी को सावधान किया।

''मैं भी अपने पति, ससुर, सास, उनके माता-पिता की सेवा कर रही हूँ। तुम किसी भी काम के नहीं हो, फिर भी तुम्हें खाना पकाकर खिला रही हूँ। भगवान मेरी प्रशंसा करेंगे, मुझे किसी भी हालत में दंड नहीं देंगे। सचमुच ही अगर तुम प्रह्लाद जैसे दैव भक्त हो, भगवान से प्रार्थना करना कि वह मुझे दंड दे। अगर तुम ऐसा नहीं कर सके तो अपने भाई के साथ घर की जिम्मेदारियाँ संभालना।'' भाभी ने यों चुनौती दी। प्रसाद ने यह चुनौती स्वीकार कर ली। हर

सम्पन्नः । श्वशुरगृहम् आगतायाः छायायाः व्यवहारः कञ्चित् कालं प्रसादाय अरोचत । किन्तु दायित्वरहितं देवरं यदा सा कतिपय-कार्याणि अवदत् तदा सः तया सह कलहाय सिद्धः अभवत् । अग्रजस्य आदित्यस्य पुरतः सः प्रजावत्याः व्यवहारविषये आक्षेपवचनानि उक्तवान् । किन्तु आदित्यः तं समाश्वासयन् – ''छाया आदिनं गृहकार्येषु व्यस्ता भवति । तस्याः वचनेषु अवधानम् अदत्त्वा स्वकीये दैवकार्ये मग्नः भवतु भवान्'' इति उक्तवान् ।

एतेन प्रसादस्य मनसि भावना आगता यत् मम कथनं गभीरम् इति न परिगण्यते अग्रजेन इति । सः एतम् एव विषयं यदा ज्येष्ठानां सकाशे उपस्थापितवान् तदा तेऽपि प्रजावत्या कार्यव्यग्रया किमपि उच्यते चेदपि अन्यथा न ग्रहीतव्यम् इत्येव अवदन् । प्रसादः तेषां पुरतः स्पष्टम् अवदत् – ''सा मम विषये हस्तक्षेपं न कुर्यादिति सूच्यताम्'' इति ।

एतत् सर्वं ज्ञातवती छाया तम् उक्तवती – ''यावत् शरीरे सामर्थ्यम् आसीत् तावत् भवतः पितामहः पितामही च परिश्रमं कृतवन्तौ । स्वेदवाहनपूर्वकं तैः यत् सम्पादितं तस्य रक्षणम् अभिवर्धनं च प्राथमिकं कर्तव्यम् । भवतः अग्रजः पूर्वजैः आसादितस्य सम्पद्राशेः संरक्षणे सपरिश्रमं मग्नः अस्ति । तत् उच्यते पौरुषम् इति । किमपि कार्यम् अकृत्वा व्यर्थ-तया समययापनं न पौरुषम्'' इति ।

''अहं व्यर्थं समयं कुत्र यापयामि ? दैवभक्तौ तथा निरतः अस्मि यथा प्रह्लादः । हिरण्यकशिपुः इव भवती मां न पीडयतु । भगवान् भवतीं दण्डयिष्यति'' इति प्रजावतीम् उक्तवान् प्रसादः ।

''अहं मम पत्युः, श्वशुरयोः, तन्माता-पित्रोः च सेवां कुर्वती अस्मि । यद्यपि भवतः लेशमात्रेण अपि प्रयोजनं नास्ति, तथापि भोजनेन भवन्तं पोषयन्ती अस्मि । अतः भगवान् मम प्रशंसाम् एव करिष्यति, न तु दण्डनम् । वस्तुतः अपि भवान् भगवद्भक्तौ प्रह्लादसदृशः यदि स्यात् तर्हि मह्यं दण्डनं ददातु इति देवं प्रार्थयताम् । एवं कर्तुं न शक्तं चेत् अग्रजेन सह गृहदायित्वानि वहेत्'' इति उक्तवती छाया । तस्याः वादः प्रसादेन अपि अङ्गीकृतः ।

प्रतिदिनं मन्दिरं गत्वा 'मम प्रजावत्या दण्डनं प्राप्तं भवतु' इति प्रसादः प्रार्थनम् आरब्धवान् । कदाचित् एषः विषयः पितामह्या ज्ञातः अभवत् । सा तं निन्दन्ती – ''प्रजावती

दिन जब-जब मंदिर जाता तब-तब भगवान से भाभी को दंड देने के लिए प्रार्थनाएँ करने लगा। उसके बारे में जब उसकी दादी को मालूम हुआ तो प्रसाद को फटकारते हुए उसने कहा, ''भाभी माँ के समान है। उसे दंड देने के लिए भगवान से प्रार्थना करना तुम्हारी मूर्खता है।''

''भाभी मेरे दैव कार्यों में बाधा डाल रही है। वह महापापिन है। प्रह्लाद मेरे लिए आदर्श है, जिसने अपने पापी पिता को घोर दंड दिलवाया। भगवान से तब तक प्रार्थना करता रहूँगा, जब तक वे भाभी को दंड नहीं देते।'' हठी प्रसाद ने कहा।

दादा, दादी, बड़े भैया प्रसाद की इन कड़वी बातों पर नाराज़ हो उठे और उससे कहा, ''भाभी से माफ़ी माँगो, नहीं तो घर छोड़कर इसी क्षण चले जाओ।''

''प्रह्लाद का एकमात्र शत्रु था, उसका बाप। इस घर में तो सबके सब मेरे शत्रु हैं। आपके कहे अनुसार मैं घर छोड़कर इसी क्षण चला जा रहा हूँ। जब तक आप लोग मुझे वापस आने के लिए नहीं कहेंगे, मैं इस घर में क़दम नहीं रखूँगा।'' यों कहकर वह घर से बाहर आ गया और गाँव के मंदिर के प्रांगण में बैठ गया।

मंदिर के पुजारी रामशास्त्री जब जान गये कि प्रसाद रूठकर चला आया तो उन्होंने उसे समझाते हुए कहा, ''तुमने बहुत बड़ी गलती की। क्या तुमने सुना नहीं कि माता-पिता भगवान के समान हैं। उनसे रूठना भगवान से रूठने के समान है। अभी वापस जाओ और उनसे क्षमा माँगो।''
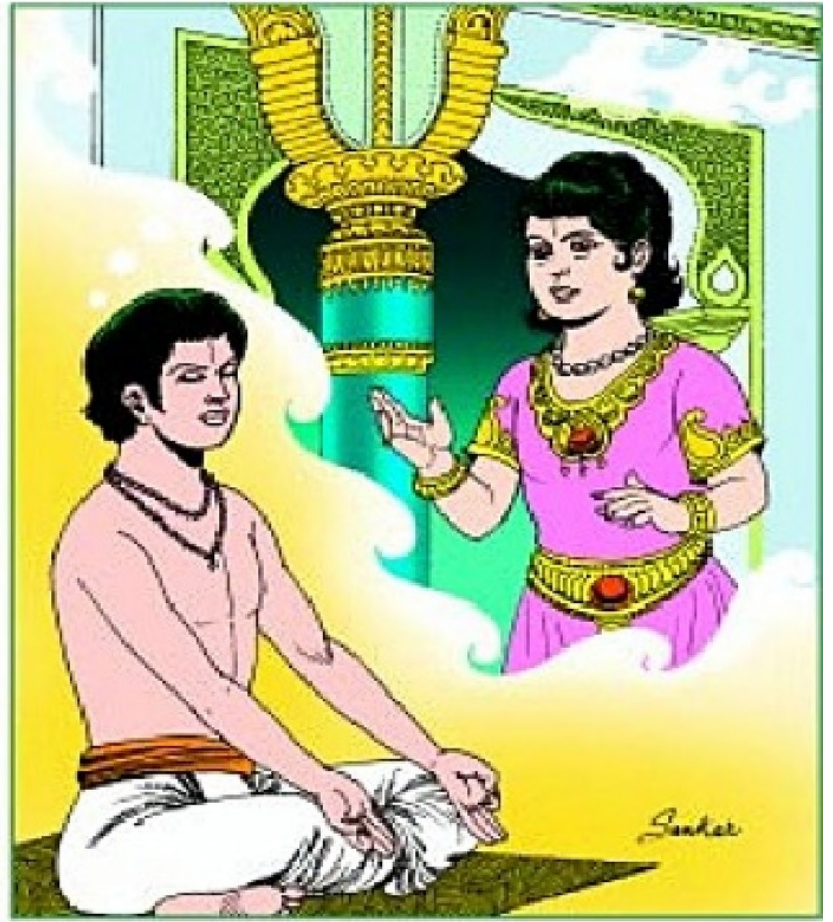
''मैं अगर अभी वापस गया तो भगवान पर सबका विश्वास उठ जायेगा। भगवान को चाहिये कि वे मेरी भाभी को कड़ी से कड़ी सज़ा दें और मेरी भक्ति को साबित करें। तब तक मैं निरंतर दैव नाम का स्मरण करूँगा, केवल तुलसी तीर्थ पीऊँगा और मंदिर में ही रहूँगा'', प्रसाद ने कहा।

रामशास्त्री मौन रह गये। प्रसाद ने तीन दिनों तक खाना नहीं खाया, पानी नहीं पिया, केवल तुलसी तीर्थ लेता रहा। भगवान ही के ध्यान में मग्न रहा। इस वजह से वह कमज़ोर हो गया।

तीसरे दिन शाम को जब वह दैव ध्यान में मग्न था, उसने सपने में वैकुंठ में बैठे बाल प्रह्लाद को देखा। उसने प्रह्लाद से कहा, ''देखो मेरी दुस्थिति। उस समय, आपके पिता हिरण्यकश्यप

तु मातृतुल्या भवति । तादृश्या दण्डनं प्राप्येत इति भगवन्तं प्रार्थयमानस्य भवतः मूर्खतां धिक्'' इति उक्तवती ।

''सा महापापिनी मम दैवकार्येषु विघ्नम् उत्पादयति प्रतिदिनम् । प्रह्लादः एव मम आदर्शः । तेन पापयुक्तस्य पितुः दण्डनं यथा भवेत् तथा कृतम् । अतः अहम् अपि तावत् देवं प्रार्थये, यावत् महादण्डनं न प्राप्येत प्रजावत्या'' इति अवदत् प्रसादः ।

पितामहः पितामही आदित्यः च प्रसादस्य एतैः कटुवचनैः खिन्नतां प्राप्य अवदन् - ''गत्वा प्रजावतीं क्षमां प्रार्थयतु, अन्यथा गृहं परित्यज्य बहिर्गच्छतु अस्मिन् एव क्षणे'' इति ।

''पूर्वं पिता एकः एव प्रह्लादस्य शत्रुः आसीत् । किन्तु एतस्मिन् गृहे सर्वेऽपि मम शत्रवः एव । भवतां कथनानुसारम् अहम् इदानीम् एव गृहं त्यक्त्वा गच्छामि । किन्तु यावत् भवन्तः प्रत्यागमनाय निवेदनं न करिष्यन्ति तावत् पादक्षेपः अपि अत्र न भविष्यति मम'' इति वदन् प्रसादः गृहात् बहिः गत्वा ग्रामान्ते स्थितस्य मन्दिरस्य प्राङ्गणे उपाविशत् ।

प्रसादः रूक्षं व्यवहृत्य आगतवान् इति ज्ञात्वा मन्दिरस्य अर्चकः रामशास्त्री तम् अवगमयन् अवदत् - ''भवता महान् अपराधः कृतः । मातापितरौ दैवसमानौ इति किं भवता न ज्ञातम् ? तयोः कोपनं दैवस्य कोपनम् इव । अतः गृहं प्रतिगत्य क्षमायाचनां करोतु भवान्'' इति ।

''अहम् इदानीम् एव प्रतिगच्छामि चेत्
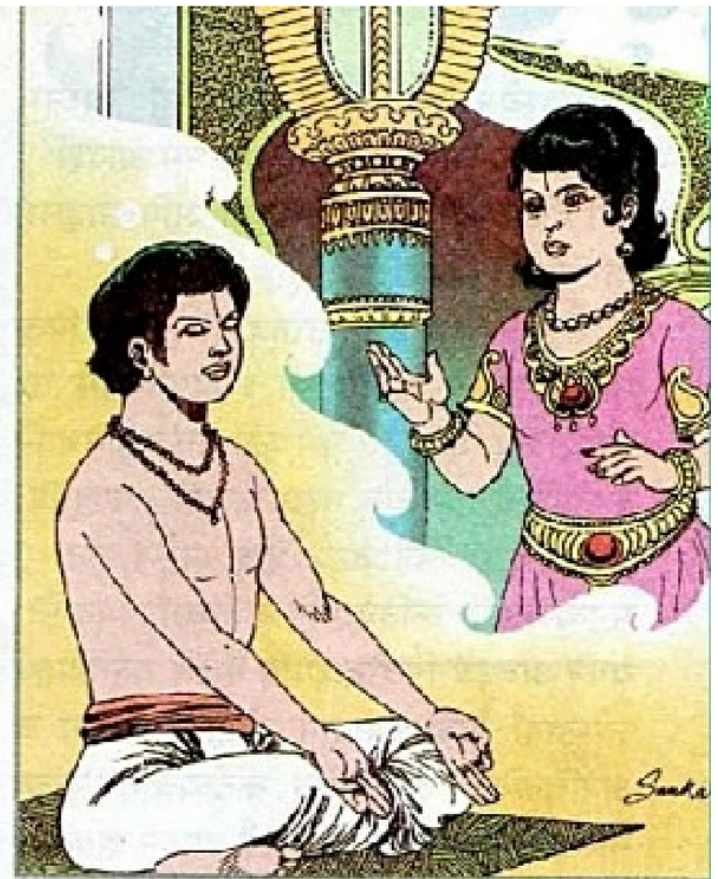
भगवति विश्वासः न भवति कस्यापि । कठिनेन दण्डनेन भगवता मम प्रजावती यदि दण्ड्येत तर्हि तस्मिन् सर्वेषां विश्वासः दृढः भवेत् । अतः यावत् मम इष्टं सिद्धं न भविष्यति तावत् अहं निरन्तरं नामस्मरणं कुर्वन् अत्र स्थास्यामि । तुलसीतीर्थमात्रं पिबन् अत्र एव भविष्यामि'' इति उक्तं प्रसादेन ।

एतत् श्रुत्वा रामशास्त्री तूष्णीकः अभवत् । दिनत्रयं यावत् प्रसादेन किमपि न भुक्तं, न वा पीतम् । तुलसीतीर्थमात्रं सेवमानः सः भगवतः ध्याने मग्नः आसीत् । अतः सः बलहीनः जातः ।

तृतीये दिने सायं ध्यानमग्नः सः स्वप्ने बालप्रह्लादम् अपश्यत् । सः प्रह्लादम् अवदत् - ''मम दुःस्थितिं पश्यतु । भवतः तु पिता एकः एव शत्रुः आसीत् । किन्तु मम

आपके एकमात्र शत्रु थे। पर, आज मेरे घर में हर कोई मेरी दैवभक्ति में अड़चन डाल रहा है। आप मेरे आदर्श हैं, मेरी भाभी को दंड दिलवाने में आप को मेरी सहायता करनी होगी।''

प्रह्लाद ने मुस्कुराते हुए कहा, ''मित्र, जानते हो, तुम क्या कह रहे हो? मेरे पिताश्री ने मुझसे द्वेष किया? कदापि नहीं। उन्होंने द्वेष किया तो अपने शत्रु विष्णु से। मुझे नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाये, केवल शत्रु द्वेष के कारण, क्योंकि मैं उनके शत्रु की शरण में गया। मनुष्य जन्म जो लेते हैं, उनके कुछ कर्तव्य होते हैं, जिन्हें उन्हें निभाना है। उनके प्रति लापरवाह होकर, बड़ों को कष्ट पहुँचाना, उन्हीं से द्वेष करना उचित नहीं। जिस भाभी ने तुम्हें अपना कर्तव्य निभाने के लिए कहा, मार्गदर्शन दिया, उन्हीं को दंड देने के लिए कह रहे हो? यह धर्म नहीं कहलाता। मानता हूँ, तुमने मुझे अपना आदर्श माना, परंतु अपनी भक्ति के द्वारा तुम उन्हें ठेस पहुँचा रहे हो। भक्ति प्रेम का आह्वान करती है, द्वेष का नहीं। मूढ़ भक्ति, मूढ़ आचार कष्ट पहुँचाते हैं। मेरी बातों पर गंभीरता के साथ चिंतन करो। जैसे ही तुममें परिवर्तन आयेगा, तुम्हारे लोग तुम्हें घर वापस ले जायेंगे।'' मधुर स्वर में प्रह्लाद ने कहा।

''मैं जान गया कि मूढ़ भक्ति कितनी कष्टदायक है, अहंभाव में आकर बड़ों का निरादर करना पाप है। मेरी आँखें खोल दीं आपने। आपका कृतज्ञ हूँ।'' प्रसाद ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

''प्रसाद, तुम्हें ढूंढ़ते कोई आये हैं।'' पुजारी ने उसके मुँह पर पानी छिड़कते कहा।

प्रसाद चौंककर उठ बैठा। उसकी समझ में नहीं आया कि यह सपना था अथवा सच। सामने बड़े भैया और भाभी खड़े थे। उन्होंने कहा, ''बिना कुछ खाये-पिये कितने दिनों तक यहीं पड़े रहोगे? चलो, घर चलते हैं!'' प्यार से सूरज ने कहा।

''भाभी, मुझे क्षमा कर देना,'' कहते हुए वह उठा और उसके पैरों पर गिर गया। ''दैवभक्ति का सच्चा अर्थ अब स्वयं अपने आदर्श प्रह्लाद से मैंने जान लिया है।'' उसमें हुए परिवर्तन को देख सब लोग बेहद खुश हुए।

गृहसदस्येषु सर्वे अपि दैवकार्ये विघ्नम् उत्पादयन्तः सन्ति । भवान् एव मम आदर्शः । मम प्रजावत्याः दण्डने भवता अपि साहाय्यं करणीयम्'' इति ।

तदा प्रह्लादः हसन् उक्तवान् - ''मम पिता मां कदापि न द्विषति स्म । द्विषति स्म सः स्वस्य शत्रुं विष्णुम् । मम कृते तेन बहुविधानि कष्टानि दत्तानि यत् तस्य कारणं - शत्रुद्वेषः एव । यतः अहं तस्य शत्रुं शरणं गतः । मनुष्यजन्मनः कतिपयानि कर्तव्यानि भवन्ति, यानि अवश्यं निर्वोढव्यानि एव । तत् उपेक्ष्य ज्येष्ठानां कृते कष्टदानं, तेषां द्वेषकरणं च अनुचितमेव । यया भवतः कर्तव्यबोधनं कृत्वा मार्गदर्शनं कृतं तस्यै प्रजावत्यै दण्डनं दातव्यम् इति चिन्तयन् अस्ति भवान् । एतत् धर्म्यं न । मां भवान् आदर्शं मन्यते इति अङ्गीकरोमि । किन्तु भवान् स्वभक्त्या तान् सर्वान् क्लेशयन् अस्ति यत् तत् तु सर्वथा अनुचितम् । भक्त्या प्रीतिः उद्भवेत्, न तु द्वेषः । मूढभक्तिः, मूढाचरणं च कष्टाय एव । मम कथनं गभीरतया परिगणयतु । भवति परिवर्तनं भविष्यति । गृहसदस्याः आगत्य भवन्तं गृहं प्रति नेष्यन्ति'' इति अवदत् प्रह्लादः मधुरस्वरेण ।

''मूढभक्त्या कष्टम् एव भवति इति, अहङ्कारेण ज्येष्ठानां निरादरः अनुचितः इति च अद्य मया ज्ञातम् । मम ज्ञानोदयः कृतः भवता । कृतज्ञोऽहम्'' इति अञ्जलिबद्धः सन् अवदत् प्रसादः ।

तावता अर्चकः तस्य मुखे जलसेचनं कृत्वा अवदत् - ''भवन्तम् अन्विष्यन्तः केऽपि आगतवन्तः सन्ति, पश्यतु भोः'' इति ।

प्रसादः आश्चर्यं प्राप्नुवन् उत्थितवान् । तेन न ज्ञातं यत् मया यत् दृष्टं तत् स्वप्नस्थम् उत वास्तविकम् इति । पुरतः अग्रजः, प्रजावती च स्थितौ आस्ताम् । ताभ्याम् उक्तं मधुरेण स्वरेण - ''विना भोजनं भवान् कति दिनानि तिष्ठेत् ? चलतु गृहदिशि'' इति ।

''प्रजावति ! क्षाम्यतु माम् । दैवभक्तेः वास्तविकम् अर्थम् अद्य अहं मम आदर्शपुरुषस्य प्रह्लादस्य मुखात् ज्ञातवान्'' इति वदन् प्रसादः प्रजावत्याः पादयोः न्यपतत् ।

तस्मिन् सञ्जातेन परिवर्तनेन सर्वे सन्तुष्टाः अभवन् ।